अतीत के चलचित्र

रोहिणी अग्रवाल

अतीत के चलचित्र

रोहिणी अग्रवाल

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: फ़रवरी, 2025

© रोहिणी अग्रवाल

अतीत के चलचित्र : स्मृति की रेखाओं में उभरी जिंदगी की बदरंग तस्वीर उर्फ समाज से कैफियत मांगते कुछ सवाल

- "सामाजिक विकृति का बौद्धिक निरूपण मैंने अनेक बार किया है, पर जीवन की इस विभीषिका से मेरा यही पहला साक्षात था। मेरे सुधार संबंधी दृष्टिकोण को लक्ष्य करके परिवार में प्रायः सभी ने कुछ निराश भाव से सिर हिलाकर मुझे यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि मेरी सात्विक कला इस लू का झोंका न सह सकेगी और साधना की छाया में पले मेरे कोमल सपने इस धुएं में जी न सकेंगे। मैंने अनेक बार सबको यही एक उत्तर दिया है कि कीचड़ से कीचड़ को धो सकना न संभव हुआ है, न होगा। उसे धोने के लिए निर्मल जल चाहिए। मेरा सदा से विश्वास रहा है कि अपने दलों पर मोती सा जल भी न ठहरने देने वाली कमल की सीमातीत स्वच्छता ही उसे पंक में जमने की शक्ति देती है।" (अतीत के चलचित्र, पृ० 54)
- "जब अभी तक मनुष्य बनने की स्वयं मेरी ही साधना पूर्ण नहीं हुई, तब इन बालिकाओं को मनुष्य बनाने का भार लेने का मुझे हौसला कैसे हुआ? ऐसे दंभ को अक्षम्य अपराधियों की कोटि में ही स्थान मिलना चाहिए।" (अतीत के चलचित्र, पृ० 54)

- “और मैं अपने मन से प्रश्न कर रही हूं, क्या तुझे आज भी आभिजात्य का गर्व है? क्या तुझे आज भी समाज द्वारा मिले भलाई-बुराई के प्रमाणों पर विश्वास है?” (अतीत के चलचित्र, पृ० 74)

1920 से 1939 तक की कालावधि में फैले ‘अतीत के चलचित्र’ में संकलित निबंधों पर विचार करते हुए देर तक मन में यही सवाल घूमता रहा कि 80-90 वर्ष पूर्व लिखी इस रचना को पढ़ने के लिए मैं कौन सी विधि अपनाऊं? क्या अपनी जमीन को छोड़कर बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में प्रविष्ट हो जाऊं, जहां छाए सघन अंधकार से लड़ने के लिए कितनी ही जागरूक मशालें अपने लक्ष्य-पथ को आलोकित करती हुई निरंतर आगे बढ़ रही हैं? या अपने ही समय के अपेक्षाकृत स्वच्छंद (प्रोग्रेसिव) समाज में अनेक संवैधानिक अधिकार भोगती स्त्री को दृष्टि-पथ में लेकर बीते समय की जड़ता पर चार आंसू बहा लूं? लेकिन ऐसा करूंगी तो रोज-रोज अखबार के पन्नों में अपनी घुटी चीखों के साथ दफन कर दी गई स्त्री-दमन की खौफनाक सच्चाइयों से मुंह नहीं मोड़ लूंगी? नहीं, मुझे ‘अतीत के चलचित्र‘ की रचयिता महादेवी वर्मा की तरफ दृष्टि को उन्मुक्त, चेतना को प्रखर, संवेदना को प्रगाढ़ और विचार को पूर्वाग्रहमुक्त रखकर ही समय को उसकी समग्रता में जांचना होगा।तब पाती हूं, दोनों ही विकल्प मुझे घुमा-फिरा कर एक ही मंजिल की ओर ले जाते हैं कि 1920 से 1939 तक के बीस वर्षों के